कहानी

जंक्शन

गजानन माधव मुक्तिबोध

रेलवे स्टेशन, लम्बा और सूना! कड़ाके की सर्दी! मैं ओवरकोट पहने हुए इत्मीनान से सिगरेट पीता हुआ घूम रहा हूँ।

मुझे इस स्टेशन पर अभी पाँच घण्टे रुकना है। गाड़ी रात के साढ़े बारह बजे आएगी।

रुकना, रुकना, रुकना! रुकते-रुकते चलना! अजीब मनहूसियत है!

प्लेटफॉर्म के पास से गुज़रने वाली लोहे की पटरियाँ सूनी हैं। शंटिंग भी नहीं है। पटरियों के उस पार, थोड़ी

ही दूरी पर रेलवे का अहाता है, अहाते के उस पार सड़क है! शाम को छह बजे ही सड़क पर और उससे लगे हुए नए मकानों में बिजलियाँ झिलमिलाने लगी हैं!

उदास और मटमैली शाम! एक बार टी-स्टॉल पर चाय पी आया हूँ। फिर कहाँ जाऊँ! शहर में जा कर भोजन कर आऊँ? लेकिन यहाँ सामान कौन देखेगा। आस-पास बैठे हुए मुसाफिर फटी चादरों और धोतियों को ओढ़े हुए, सिमटे-सिमटे, ठिठुरे-ठिठुरे चुपचाप बैठे हैं। इनके भरोसे सामान कैसे छोड़ा जाए! कोई भी उसमें से कुछ उठा कर चम्पत हो सकता है।

टी-स्टॉल की तरफ नज़र डालता हूँ। इक्के-दुक्के मुसाफिर घुटने छाती से चिपकाए बैठे हुए दिखाई दे रहे हैं। गरम ओवरकोट पहन कर चलने वाला सिर्फ मैं हूँ, मैं।

अगर कोई भी मुझे उस वक्त देखता तो पाता कि मैं कितने इत्मीनान और आत्म-विश्वास के साथ कदम बढ़ा रहा हूँ। इतनी शान मुझे पहले कभी महसूस नहीं हुई थी। यह बात अलग है कि गरम ओवरकोट उधार लिया हुआ है। राजनाँदगाँव से जबलपुर जाते समय एक मित्र ने कृपापूर्वक उसे प्रदान किया था। इसमें सन्देह नहीं कि समाज में अगर अच्छे आदमी न रहें, तो वह एक क्षण न चले।

सिगरेट पीते हुए मैं मुसाफिरखाने की तरफ देखता हूँ। वहाँ आदमी नहीं, आदमीनुमा गन्दा सामान इधर-उधर बिखेर दिया गया है। उनकी तुलना में सचमुच मैं कितना शानदार हूँ।

अनजाने ही मैं अकड़ कर चलने लगता हूँ; और किसी को ताव बताने की, किसी पर रौब झाड़ने की तबीयत होती है। इन सब टूटे हुए अक्षर (प्रेस टाइप) जैसे लोगों के बीच गुज़र कर अपने को काफी ऊँचा और प्रभावशाली समझने लगता हूँ। सच कहता हूँ, इस समय मेरे पास पैसे भी हैं। अगर कोई भिखारी इस समय आता तो मैं अवश्य ही उसे कुछ प्रदान करता। लेकिन भिखारी बेवकूफ थोड़े ही है, जो वहाँ आए; वहाँ तो सभी लगभग भिखारी थे।

सोचा कि ट्रंक खोल कर सामान निकाल कर कुछ ज़रूरी चिट्ठियाँ लिख डालूँ। मैंने एक सम्माननीय नेता को इसी प्रकार समय सदुपयोग करते हुए देखा था। अभी उजाला काफी था। दो-चार चिट्ठियाँ रगड़ी जा सकती थीं। ट्रंक के पास मैं गया भी। उसे खोल भी दिया। लेकिन कलम उठाने की बजाय, मैंने पीतल का एक डिब्बा उठा लिया। ढक्कन खोल कर मैंने उसमें से एक 'गाकड़ लड्डू' निकाला और मुँह में भर लिया। बहुत स्वादिष्ट था वह। उसमें गुड़ और डालडा घी मिला हुआ था। इसी बीच मुझे घर के बच्चों की याद आई। और मैंने दूसरा लड्डू मुँह में डालने की प्रवृत्ति पर पाबन्दी लगा दी।

तभी मुझे गाँधीजी की याद आई। क्या सिखाया उन्होंने? परदुःख कातरता।

इन्द्रिय-संयम। यह मैं क्या कर रहा हूँ? यद्यपि लड्डू मेरे ही लिए दिए गए हैं और मैं पूर्णतया उन्हें खाने का नैतिक अधिकार भी रखता हूँ। लेकिन क्या यह सच नहीं है कि बच्चों को सिर्फ आधा-आधा ही दिया गया है। फिर मैं तो एक खा चुका हूँ।

पानी पीने के लिए निकालता हूँ। मुसाफिर वैसे ही ठिठुरे-ठिठुरे, सिमटे-सिमटे बैठे हैं। उनके पास गरम कोट तो क्या, साधारण कपड़े भी नहीं हैं। उनमें से कुछ बीड़ी पी रहे हैं। किसी के पास गरम कोट नहीं है, सिवा मेरे। मैं अकड़ता हुआ स्टॉल पर पानी की तलाश में जाता हूँ।

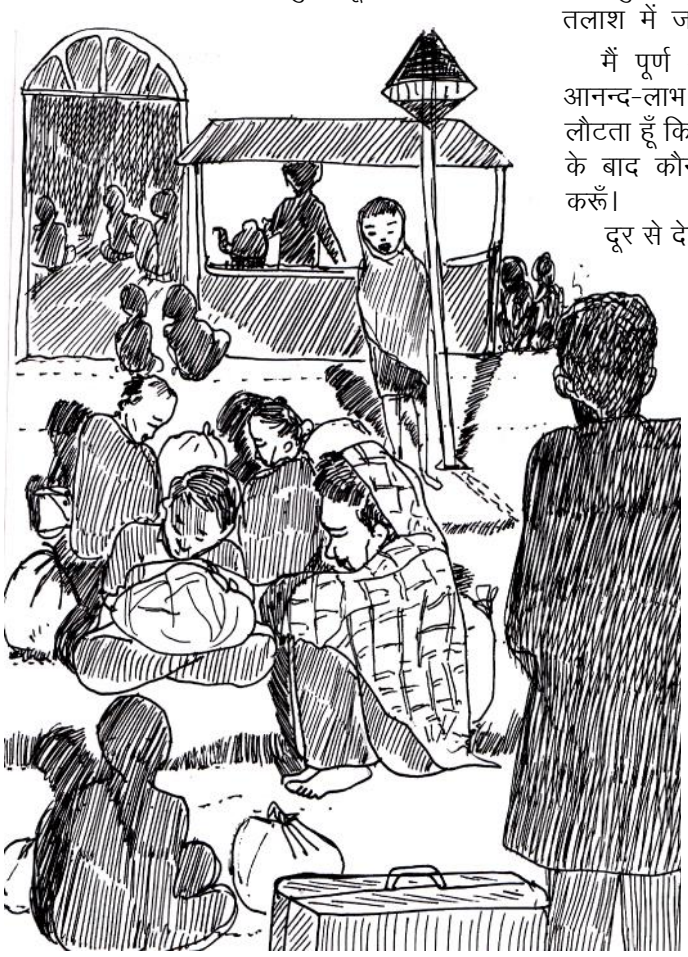

मैं पूर्ण आत्म-सन्तोष का आनन्द-लाभ करता हुआ वापस लौटता हूँ कि अब इस कार्यक्रम के बाद कौन-सा महान कार्य करूँ।

दूर से देखता हूँ कि सामान सुरक्षित है। शाम डूब रही है। अँधेरा छा गया है। अभी कम-से-कम चार घण्टे यहीं पड़े रहना है। एक पोर्टर से बात करते हुए कुछ समय और गुज़ार देता हूँ।

और फिर होल्डाल निकाल कर बिस्तर बिछा देता हूँ। सुन्दर, गुलाबी अलवान और खुशनुमा कम्बल निकल पड़ता है। मैं अपने को वाकई भला आदमी

समझने लगता हूँ। यद्यपि यह सच है कि दोनों चीज़ों में से एक भी मेरी अपनी नहीं है।

ओवरकोट समेत मैं बिस्तर पर ढेर हो जाता हूँ। टूटी हुई चप्पलें बिस्तर के नीचे सिर के पास इस तरह जमा कर देता हूँ कि मानो वह धन हो। धन तो वह हई है। कोई उसे मार ले तो! तब पता चलेगा!

गुलाबी अलवान ओढ़कर पड़ा रहता हूँ। अभी तक स्टेशन पर कपड़ों के मामले में मुझे चुनौती देने वाला कोई नहीं आया (शायद यह इलाका बहुत गरीब है)। कहीं भी, एक भी खुशहाल, सुन्दर, परिपुष्ट आकृति नहीं दिखाई दी।

कैसा मनहूस प्लेटफॉर्म है।

मेरे बिस्तर के पास एक सीमेंट की बेंच है। वहाँ गठरियाँ रखी हुई हैं। सोचता हूँ, उस पर अपना ट्रंक क्यों न रख दूँ। गठरियाँ नीचे भी डल सकती हैं। ट्रंक उनसे उम्दा चीज़ है; उसे साफ-सुथरी बेंच पर होना चाहिए।

लेकिन उठने की हिम्मत नहीं होती। कड़ाके का जाड़ा है। अलवान के बाहर मुँह निकालने की तबीयत नहीं हो रही है। लेकिन नींद भी तो आँखों से दूर है।

विचित्र समस्या है। खुद ही अकेले में, अपने को अकेले ही शानदार समझते रहो। इसमें क्या धरा है। शान का सम्बन्ध अपने से ज़्यादा दूसरों से है। यह अब मालूम हुआ। लेकिन किस मुश्किल में।

उसी बीच एकाएक न मालूम कहाँ से चार फीट का एक गोरा चिट्टा लड़का सामने आ जाता है। वह टेरीलीन का कुरता पहने हुए है। खाकी चड्ढी है। चेहरा लगभग गोल है। गोरे चेहरे पर भौंओं की धुँधली लकीर दिखाई देती है। या उनका रंग भी गोरा है।

वह सामने खड़े-ही-खड़े एक चमड़े के छोटे-से बैग की ओर इशारा करते हुए कहता है, "साब, ज़रा ध्यान रखिएगा। मैं अभी आया।" एकाएक इस तरह किसी का आ कर कुछ कहना मुझे अच्छा लगा! उसकी आवाज़ कमज़ोर है। लेकिन उस आवाज़ में भले घर की झलक है। उसके साफ-सुथरे कपड़ों से भी यही बात झलकती है।

मैं 'हाँ' कह ही रहा था कि उसके पहले लड़का चला गया। मैं उसके बारे में सोचता रहा, न जाने क्या।

आधे घण्टे बाद वह फिर आया। और चुपचाप चमड़े के बैग के पास जा कर बैठ गया। सर्दी के मारे उसने अपनी हथेलियाँ खाकी चड्ढी की जेब में डाल रखी थीं। मैंने गुलाबी अलवान के नीचे से मुँह उठा कर उसे देखा।

भले ही वह टेरीलीन की बुश्शर्ट पहने हो, वह खूब ठिठुर रहा था। बुश्शर्ट के नीचे एक अंडरवीयर था। बस! उसके पास ओढ़ने-बिछाने के भी कपड़े नहीं थे।

कुछ कौतुहल और कुछ चिन्ता से मैंने पूछा, "तुम ओढ़ने के कपड़े ले कर क्यों नहीं आए? कितना जाड़ा है। ऐसे कैसे निकल आए?"

उसने जो उत्तर दिया उसका आशय यह था कि यहाँ से करीब पचास मील दूर शहर बालाघाट में एक बारात उतरी थी। उसमें वह, उसके घरवाले और दूसरे रिश्तेदार भी थे। एक रिश्तेदार वहाँ से आज ही नागपुर चल दिया, लेकिन अपना चमड़े का बैग भूल गया। चूँकि वहाँ वालों को मालूम था कि गाड़ी नागपुर की ओर जाने वाले उस स्टेशन से बहुत देर से छूटती है, इसलिए उन्होंने इस लड़के के साथ यह बैग भेज दिया।

लेकिन अब यह लड़का कह रहा है कि रिश्तेदार कहीं दिखाई नहीं दे रहे हैं। वह दो बार प्लेटफॉर्म के चक्कर काट आया है। शायद वे सम्बन्धी महोदय बस से नागपुर रवाना हो गए। और अब चमड़े का बैग सँभाले हुए यह लड़का सर्दी में ठिठुरता हुआ यहाँ बैठा है। वह भी मेरी साढ़े बारह बजे वाली गाड़ी से बालाघाट पहुँच जाएगा। यह गाड़ी वहाँ रात के डेढ़ बजे पहुँचती है।

कड़ाके का जाड़ा और रात के डेढ़। मैंने कल्पना की कि इसकी माँ फूहड़ है, या वह उसकी सौतेली माँ है। आखिर उसने क्या सोच कर अपने लड़के को इस भयानक सर्दी में, बिना किसी खास इन्तज़ाम के एक ज़िम्मेदारी देकर रवाना कर दिया?

मैंने फिर लड़के की तरफ देखा। वह मारे सर्दी के बुरी तरह ठिठुर रहा था। और मैं अपने अलवान और कम्बल का गरम सुख प्राप्त करते हुए आनन्द अनुभव कर रहा था।

मैं बिस्तर से उठ पड़ा। ट्रंक खोला। उसमें से डबलरोटी के दो टुकड़े निकाले। फिर सोचा, एक लड्डू भी निकाल लूँ। किन्तु यह विचार आया की लड़का टेरीलीन की बुश्शर्ट पहने है। फिर लड्डू गुड़ के हैं। वह उसका अनादर कर सकता है।

उसके हाथ में डबलरोटी के दो टुकड़े और चाय वाले से लिया हुआ एक चाय का कप देते हुए कहा, "तुमने अभी तक कुछ नहीं खाया है। लो, इसे लो।"

"नहीं-नहीं, मैंने अभी भजिये खाए

हैं।" और लड़के के नन्हे हाथों ने तुरन्त ही लपक कर उसे ले लिया। उसको खाते-पीते देख कर मेरी आत्मा तृप्त हो रही थी।

मैंने पूछा, "बालाघाट से कब चले थे?"

"तीन बजे।"

"तीन बजे से तुमने कुछ नहीं खाया?"

"नहीं तो, दो आने के भजिये खाए थे। चाय पी थी।"

मेरा ध्यान फिर उसके माता-पिता की ओर गया और मैं मन-ही-मन उन्हें गाली देने लगा।

मुझे नींद नहीं आ रही थी। मैंने लड़के से कहा, "आओ, बिस्तर पर चले आओ। साढ़े दस बजे उठा दूँगा।"

लड़के ने तुरन्त ही चमड़े के अपने कीमती जूते के बन्द खोले, मोजे निकाले। सिरहाने रख दिए। और बिस्तर के भीतर पड़ गया।

मैं ट्रंक के पास बैठा हुआ था। लड़का मेरे बिस्तरे पर। मैं खुद जाड़े में। वह गरमी महसूस करता हुआ।

किन्तु मेरा ध्यान उस लड़के की तरफ था। कितना भोला विश्वास है उसके चेहरे पर।

और मैं सोचने लगा कि मनुष्यता इसी भोले विश्वास पर चलती है। और इस भोले विश्वास के वातावरण में ही कपट और छल करने वाले पनपते हैं।

मेरे बदन पर ओवरकोट था, लेकिन अब वह कोई गरमी नहीं दे रहा था।

मैं फिर से टी-स्टॉल पर गया। फिर एक कप चाय पी और मनुष्य के भाग्य के बारे में सोचने लगा। मान लीजिए, इस लड़के के पिता ने दूसरी शादी कर ली है। इस लड़के की माँ मर गई है, और जो है, वह सौतेली है। अगर अभी से वह लड़के की इतनी उपेक्षा करती है तो हो चुकी अच्छी तालीम। क्या पता, इस लड़के का भाग्य क्या हो!

लड़के ने मेरी दी हुई हर चीज़ लपक कर ली थी। मुझ पर खूब गहरा विश्वास कर लिया था। क्या यह इसका सबूत नहीं है कि लड़के के दिल में कहीं कोई जगह है जो कुछ माँगती है, कुछ चाहती है? ईश्वर करे, उसका भविष्य अच्छा बने।

इन्हीं खयालों में डूबता-उतराता मैं अपने बच्चों को देखने लगा जो घर में दरवाज़े बन्द करके भी तेज़ सर्दी महसूस कर रहे होंगे। उनके पास रजाई भी नहीं है। तरह-तरह के कपड़े जोड़-जाड़ कर जाड़ा निकालते हैं। इस समय, घर सूना होगा और वे मेरी याद करते बैठे होंगे। बच्चे! बच्चे और उनकी वह माँ, जो सिर्फ भात खा कर मोटी हुई जा रही है, लेकिन चेहरे पर पीलापन है।

मैंने बच्चों को सिखा दिया है कि बेटे कभी इच्छामय दृष्टि से दुनिया को मत देखना। वह मामूली इच्छा भी

पूरी नहीं कर सकती। और चाहे जो करो, मौका पड़ने पर झूठ बोल सकते हो, लेकिन यह मत भूलना कि तुम्हारे गरीब माँ-बाप थे। तुम्हारी जन्मभूमि ज़मीन और धूर और पत्थर से बनी यह भारत की धरती ही नहीं है। वह है - गरीबी। तुम कटे-पिटे दागदार चेहरेवालों की सन्तान हो। उनसे द्रोह मत करो। अपने इन लोगों को मत त्यागना। प्रगतिवाद तो मैंने अपने घर से ही शुरू कर दिया था। मेरे बड़े बच्चे को यह कविता रटा दी थी -

ज़िन्दगी की कोख में जन्मा
नया इस्पात
दिल के खून में रंग कर!
तुम्हारे शब्द मेरे शब्द
मानव-देह धारण कर
अरे चक्कर लगा घर-घर, सभी से कह रहे हैं
... सामना करना मुसीबत का,
बहुत तन कर
खुद को हाथ में रख कर।
उपेक्षित काल - पीड़ित सत्य-गो के यूथ
उदासी से भरे गम्भीर
मटमैले गऊ चेहरे।
उन्हीं को देख कर जीना
कि करुणा करनी की माँ है।
बाकी सब कुहासा है,
धुआँ-सा है।

लेकिन, यह थोड़े ही है कि लड़का मेरी बात मान ही जाएगा। मनुष्य में कैसे परिवर्तन होते हैं। सम्भव है, वह थानेदार बन जाए और डण्डे चलाए। कौन जानता है।

मैं अपनी ही कविता का मज़ा लेता हुआ और भीतर झूमता हुआ वापस लौटता हूँ। उस वक्त सर्दी मुझे कम महसूस होने लगती है। बिस्तर के पास जा कर खड़ा हो जाता हूँ। और गुलाबी अलवान और नरम कम्बल के नीचे सोए हुए उस बालक की शान्ति निद्रित मुद्रा को मग्न अवस्था में देखने लगता हूँ। और मेरे हृदय में प्रसन्न ज्योति जलने लगती है।

कि इसी बीच मुझे बैठ जाने की तबीयत होती है। पासवाली सीमेंट की बेंच पर ज़रा टिक जाता हूँ। और

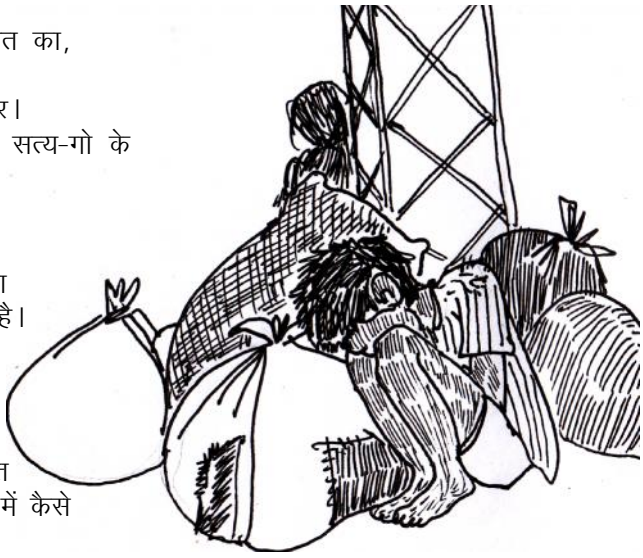

बाईं ओर रेलवे अहाते के पार देखने लगता हूँ।

बाईं ओर बेंच पर रखी गठरियों के पास बैठे हुए एक-दूसरी आकृति की ओर ध्यान जाता है।

हरी धारी वाली एक सफेद शर्ट पहने वह बालक है, जो घुटनों को छाती से चिपकाए बैठा है। बाँहों से उसने अपने घुटनों को छाती से जकड़ लिया है, और ऊपरवाली बीच की पोली जगह में उसने अपना मुँह फँसा लिया है। मुझे उसका मुँह नहीं दीखता, सिर्फ उसका सिर और बाल दिखते हैं। वह न मालूम कब से वैसा बैठा है। और ठिठुरा-ठिठुरा (गठरियों के बीच) वह खुद गठरी बन कर लुप्त-सा हो गया है।

अगर मैं अपने लड़के को आज रात को सफर कराता तो शायद वह भी इसी तरह बैठता। क्यों बैठता! मैं तो उसका इन्तज़ाम करके भेजता, किसी भी तरह, क्योंकि मेरे कनेक्शंस (सम्बन्ध) अच्छे हैं। इस बेचारे गरीब देहाती लड़के के सम्बन्ध क्या हो सकते हैं।

मैं उस लड़के को पुनः एकाग्रचित से देखने लगता हूँ। उसका मुँह अभी तक घुटनों के बीच फँसा है। अपने अस्तित्व का नगण्य और शून्य बना कर वह किसी निःसंग अन्धकार में विलीन होना चाह रहा है।

मैं उसके पास जाकर खड़ा हो जाता हूँ, ताकि उसकी हलचल, अगर है, तो दिखाई दे। लेकिन नहीं, उसने तो अपने और मेरे बीच एक फासला बना लिया है। लेकिन क्या यह सच नहीं है कि मैं उसे उठा सकता हूँ, मैं उसे कुछ-न-कुछ दे सकता हूँ? मैं उसे भी डबलरोटी का एक टुकड़ा और एक कप चाय दे कर उसके भीतर गरमी पैदा कर सकता हूँ।

मैं उसके पास खड़ा हूँ। और एक क्षण में नवीन कार्य-शृंखला गतिमान कर सकता हूँ। काम तो यांत्रिक रूप से चलते हैं। एक के बाद एक।

लेकिन मैं वहाँ से हट जाता हूँ। फिर बेंच के किनारे पर बैठ जाता हूँ और फिर प्लेटफॉर्म की सूनी बत्तियों को देखने लगता हूँ। मेरा मन एकाएक स्तब्ध हो जाता है।

मेरे बिस्तर पर सोने वाला बालक ठीक समय पर अपने-आप ही जाग उठा। तुरन्त मोजे पहने, चमड़े का कीमती जूता पहना, बन्द बाँधे। अपनी टेरीलीन की बुशशर्ट को ठीक किया। नेकर की जेब में से कंघी निकालकर बालों को सँवारा।

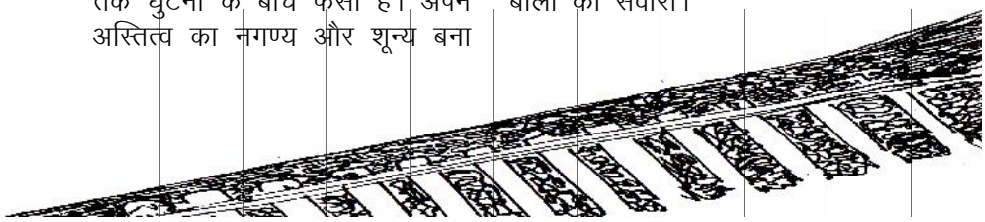

और बिस्तर से बाहर आकर खड़ा हो गया, चुस्त और मुस्तैद। और फिर अपनी उसी कमज़ोर पतली आवाज़ में कहा, "टिकिट-घर खुल गया होगा।"

मैंने पूछा, "टिकिट के लिए पैसे हैं, या दूँ?"

"नहीं, नहीं, वह सब मेरे पास हैं।" यह उसने इस तरह कहा जैसे वह अपनी देखभाल अच्छी तरह कर सकता हो।

वह चला गया। मुझे लगा कि टेरीलीन की बुश्शर्ट वाले इस बालक को दूसरों की सहायता का अच्छा अनुभव है। और वह स्वयं एक सीमा तक छल और निश्छलता का विवेक कर सकता है।

मेरा बिस्तर खाली हो गया और अब मैं चाहूँ तो बेंच के दूसरे छोर पर घुटनों में मुँह ढाँपे इस दूसरे बालक को आराम की सुविधा दे सकता हूँ।

और मैं अपने मन मे निःसंग अन्धकार में कहता जाता हूँ, "उठो, उठो, उस बालक को बिस्तर दो।"

लेकिन मैं जड़ हो गया हूँ। और मेरे अँधेरे के भीतर एक नाराज़ और सख्त आवाज़ सुनाई देती है, "मेरा बिस्तर क्या इसलिए है कि वह सार्वजनिक सम्पत्ति बने। शीः। ऐसे न मालूम कितने ही बालक हैं जो सड़कों पर घूमते रहते हैं।"

मैं बेंच के किनारे पर से उठ पड़ता हूँ और टी-स्टॉल पर जा कर एक कप चाय पीता हूँ। सर्दी मेरे बदन में कुछ कम होती है। और फिर मैं अपने सामान की तरफ रवाना होता हूँ।

सीमेंट की ठण्डी बेंच के किनारे पर घुटनों में मुँह ढाँपे हुए उस बालक की आकृति मुझे दूर ही से दिखाई देती है। क्या वह सर्दी में ठिठुर कर मर तो नहीं गया?

लेकिन पास पहुँच कर भी मैं उसे हिलाता-डुलाता नहीं, उसे जगाने की कोशिश नहीं करता, न उसके चारों ओर, चुपचाप, अलवान डालने की कोशिश करता। सोचता हूँ करना चाहिए; लेकिन नहीं करता।

आश्चर्य है कि मैं भीतर से इतना जड़ हो गया हूँ, कौन-सी वह भीतरी पकड़ है जो मुझे वैसा करने से रोकती है।

मैं टिकिट खरीदने गए टेरीलीन वाले लड़के की राह देखता हूँ। वह अब तक क्यों नहीं आया?

कि एकाएक यह ख्याल पूरे ज़ोर के साथ कौंध उठता है - अगर मैं ठण्ड से सिकुड़ते इस लड़के को बिस्तर दूँ तो मेरी (दूसरों की ली हुई ही क्यों न सही) यह कीमती अलवान और यह नरम कम्बल, और यह दूधिया चादर खराब हो जाएगी। मैली हो जाएगी। क्योंकि जैसा कि साफ दिखाई देता है यह लड़का अच्छे खासे साफ-सुथरे बढ़िया कपड़े पहने हुए थोड़े है। मुद्दा यह है। हाँ, मुद्दा यह है कि वह दूसरी ओर निचले किस्म के, निचले तबके के लोगों की पैदावार है।

मैं अपने भीतर ही नंगा हो जाता हूँ। और अपने नंगेपन को ढाँपने की कोशिश भी नहीं करता।

उस वक्त घड़ी ठीक बारह बजा रही थी और गाड़ी आने में अभी आधे घण्टे की देर थी।

गजानन माधव मुक्तिबोध (1917-1964): 'अँधेरे में', 'ब्रह्मराक्षस' जैसी विशिष्ट कविताओं के रचयिता गजानन माधव मुक्तिबोध बीसवीं सदी के प्रख्यात हिन्दी कवि, निबन्धकार, साहित्यिक व राजनैतिक आलोचक और कहानीकार थे। वे 'वसुधा' और 'नया खून' जैसी पत्रिकाओं से भी सम्बद्ध रहे हैं।

सभी चित्र व सज्जा: कनक शशि: स्वतंत्र कलाकार के रूप में पिछले एक दशक से बच्चों की किताबों के लिए चित्रांकन कर रही हैं। भोपाल में निवास।

यह कहानी महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय की वेबसाइट हिन्दी समय डॉट कॉम से साभार।